International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 5 Issue 2, Mar-Apr, 2017, Impact Factor 1.554

आधुनिक शिक्षा प्रणाली और सांस्कृतिक चेतना

डॉ. सुशील कुमार शर्मा

प्राध्यापक, इतिहास विभाग राजकीय महाविद्यालय, गुढागौड़जी झुंझुनूं

सारांश

भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही ज्ञान, नैतिकता और मानवता की त्रिवेणी रही है। शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि व्यक्ति के आचरण, मूल्य एवं सामाजिक चेतना का निर्माण भी रहा है। परंतु आधुनिक युग में औद्योगिकीकरण, वैश्वीकरण और पश्चिमी प्रभाव ने शिक्षा प्रणाली को व्यावसायिक एवं तकनीकी दिशा में मोड़ दिया है। परिणामस्वरूप, सांस्कृतिक चेतना, जो भारतीय समाज की आत्मा थी, धीरे-धीरे क्षीण हो रही है। इस शोधपत्र में आधुनिक शिक्षा प्रणाली के विकास, उसके उद्देश्यों, और भारतीय सांस्कृतिक चेतना पर पड़े प्रभाव का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। साथ ही, यह भी विवेचना की गई है कि किस प्रकार शिक्षा भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण का माध्यम बन सकती है।

मुख्य शब्द: शिक्षा, संस्कृति, चेतना, आधुनिकता, मूल्य, परंपरा।

परिचय

भारत का इतिहास यह प्रमाणित करता है कि शिक्षा का स्वरूप सदैव संस्कृति और समाज से अभिन्न रूप से जुड़ा रहा है। प्राचीन भारत में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य "साधना द्वारा सत्य की प्राप्ति" था। परंतु आधुनिक काल में शिक्षा का स्वरूप भौतिकवादी और लाभोन्मुख होता गया। औपनिवेशिक शासन ने जिस आधुनिक शिक्षा प्रणाली को भारत में स्थापित किया, उसका मूल उद्देश्य भारतीय समाज को प्रशासनिक दृष्टि से उपयोगी बनाना था, न कि सांस्कृतिक रूप से सशक्त। परिणामस्वरूप, आधुनिक शिक्षा ने भारतीय समाज को आधुनिक विज्ञान और तर्क की दृष्टि से तो समृद्ध किया, परंतु उसकी सांस्कृतिक जड़ों को कमजोर कर दिया। सांस्कृतिक चेतना का अर्थ है अपने समाज की परंपराओं, नैतिक मूल्यों, भाषा और कला के प्रति संवेदनशील होना। जब शिक्षा केवल बौद्धिकता तक सीमित हो जाती है, तो यह चेतना मुरझाने लगती है। यही कारण है कि आज के भारत में शिक्षा और संस्कृति के बीच सामंजस्य की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का सांस्कृतिक स्वरूप

प्राचीन भारत की गुरुकुल प्रणाली केवल शैक्षिक संस्था नहीं थी, बल्कि यह संस्कार, अनुशासन और आध्यात्मिक प्रशिक्षण का केंद्र थी। तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है — *"सत्यम् वद, धर्मं चर"* — अर्थात् सत्य बोलो और धर्म का पालन करो। यह शिक्षा का आदर्श वाक्य था। विद्यार्थी गुरु के सान्निध्य में आत्म-संयम, विनम्रता, और कर्तव्यपरायणता सीखते थे। शिक्षा का उद्देश्य केवल जीविका नहीं, बल्कि 'जीवन' का निर्माण था। नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला और वल्लभी जैसे विश्वविद्यालय न केवल विद्या के केंद्र थे, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना के वाहक भी थे। इन संस्थानों में धर्म, दर्शन, गणित, आयुर्वेद, कला, और संगीत का अध्ययन एक साथ होता था। यह समन्वयात्मक दृष्टिकोण ही भारतीय शिक्षा की विशेषता थी।

औपनिवेशिक युग और आधुनिक शिक्षा का आगमन

19वीं शताब्दी में ब्रिटिश शासन के दौरान जब आधुनिक शिक्षा प्रणाली लागू की गई, तो उसने भारतीय संस्कृति की जड़ों को झकझोर दिया। लॉर्ड मैकॉले के 1835 के शिक्षा प्रस्ताव ने भारतीय शिक्षा को अंग्रेजी माध्यम में सीमित कर दिया। इस नीति का उद्देश्य भारतीयों को "क्लर्क" बनाना था, न कि विचारक या समाज सुधारक। आधुनिक शिक्षा ने जहाँ तर्कशीलता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को जन्म दिया, वहीं इसने भारतीय भाषाओं, परंपराओं और नैतिक मूल्यों की उपेक्षा की। परिणामस्वरूप, शिक्षित वर्ग अंग्रेजी जीवनशैली का अनुकरण करने लगा और अपनी सांस्कृतिक पहचान से दूर होता गया। इस प्रक्रिया को भारतीय समाजशास्त्री ई.एस. रेड्डी ने "संस्कृतिक दुविधा" कहा — जहाँ व्यक्ति आधुनिक बनना चाहता है परंतु अपनी जड़ों से भी पूरी तरह अलग नहीं हो पाता।

स्वतंत्रता संग्राम और शिक्षा में सांस्कृतिक पुनर्जागरण

20वीं शताब्दी के आरंभ में भारतीय शिक्षाविदों और विचारकों ने आधुनिक शिक्षा के पश्चिमी ढांचे को चुनौती दी। महात्मा गांधी, रविन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी विवेकानंद और श्री अरबिंदो ने शिक्षा को पुनः भारतीय संदर्भ में परिभाषित करने का प्रयास किया। गांधीजी ने 'बेसिक एजुकेशन' या 'नई तालीम' की संकल्पना प्रस्तुत की, जिसमें शिक्षा को श्रम, नैतिकता और आत्मनिर्भरता से जोड़ा गया। उनका मत था कि शिक्षा व्यक्ति को अपने परिवेश और समाज के प्रति उत्तरदायी बनाए। टैगोर ने शिक्षा को प्रकृति, कला और स्वतंत्र चिंतन से जोड़ा, जबकि विवेकानंद ने कहा —"शिक्षा वह है जो मनुष्य के भीतर की शक्ति को जाग्रत करे।" इन सभी विचारों का सार यह था कि शिक्षा केवल जानकारी नहीं देती, बल्कि संस्कृति और चरित्र का निर्माण करती है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान शिक्षा भारतीय अस्मिता और सांस्कृतिक चेतना का प्रमुख माध्यम बनी।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली की विशेषताएँ

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में शिक्षा नीति का प्रमुख लक्ष्य साक्षरता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास था। 1968, 1986 और 1992 की राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों में तकनीकी शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और विज्ञान के प्रसार पर बल दिया गया। इसके परिणामस्वरूप शिक्षा प्रणाली में एक ओर तो प्रगति हुई, पर दूसरी ओर सांस्कृतिक मूल्यों की उपेक्षा भी बढ़ी। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में मानविकी विषयों का महत्व कम हुआ, जबकि तकनीकी और प्रबंधन विषयों को अधिक प्राथमिकता दी गई। इससे विद्यार्थियों में सांस्कृतिक चेतना के स्थान पर प्रतिस्पर्धा और उपभोक्तावादी प्रवृत्ति विकसित हुई।

डॉ. राधाकृष्णन आयोग (1948) और कोठारी आयोग (1966) दोनों ने शिक्षा को संस्कृति से जोड़ने की आवश्यकता पर बल दिया, परंतु व्यावहारिक रूप में इसे लागू नहीं किया जा सका।

सांस्कृतिक चेतना का ह्रास

आज की शिक्षा प्रणाली में ज्ञान और संस्कृति के बीच की दूरी लगातार बढ़ रही है। शिक्षण संस्थानों में भारतीय इतिहास, साहित्य, दर्शन और कला को गौण मान लिया गया है। विद्यार्थी आधुनिक तकनीक और विदेशी भाषाओं में दक्ष तो हो रहे हैं, परंतु उन्हें अपने देश की सभ्यता, लोक परंपराओं और नैतिक मूल्यों की जानकारी नहीं है। पाश्चात्य प्रभाव ने जीवनशैली और सोच दोनों को बदल दिया है। परिवार और समाज में पारंपरिक संस्कार जैसे बड़ों का सम्मान, सामूहिकता, सहिष्णुता आदि कमजोर पड़ गए हैं। शिक्षा यदि केवल रोजगार का साधन बन जाए तो वह समाज के नैतिक ढांचे को कमजोर करती है। यही आज की सबसे बड़ी चुनौती है।

शिक्षा और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की आवश्यकता

यदि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति और समाज का उत्थान है, तो उसमें सांस्कृतिक चेतना का होना अनिवार्य है। सांस्कृतिक चेतना केवल प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन तक सीमित नहीं, बल्कि यह जीवन के सभी क्षेत्रों में भारतीयता का भाव जागृत करती है। शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में भारतीय भाषाओं, लोककला, योग, संगीत, नाट्यकला और दर्शन की समझ विकसित की जानी चाहिए। विद्यालयों में नैतिक शिक्षा, सामुदायिक सेवा और पर्यावरण चेतना जैसे विषयों को भी अनिवार्य बनाया जाना चाहिए।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था —"संस्कृति केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान की जीवन शैली है।" इस दृष्टि से शिक्षा को संस्कृति का जीवंत माध्यम बनाना समय की आवश्यकता है।

मीडिया, वैश्वीकरण और सांस्कृतिक चेतना

वैश्वीकरण और आधुनिक मीडिया ने शिक्षा और समाज दोनों को प्रभावित किया है। इंटरनेट और सोशल मीडिया के युग में ज्ञान की पहुँच तो बढ़ी है, परंतु सांस्कृतिक विकृति भी बढ़ी है। पाश्चात्य मनोरंजन, उपभोक्तावाद और भाषा का प्रभाव विद्यार्थियों के जीवन पर गहरा पड़ा है। इस संदर्भ में शिक्षकों और अभिभावकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्हें विद्यार्थियों को यह समझाना होगा कि आधुनिकता का अर्थ परंपरा का परित्याग नहीं, बल्कि उसमें नवीनता का समावेश है। यदि शिक्षा तकनीक के साथ संस्कृति को भी अपनाए, तो यह समग्र विकास का आधार बन सकती है।

निष्कर्ष

आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने भारत को वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी और तकनीकी दृष्टि से उन्नत बनाया है, किंतु इसने सांस्कृतिक चेतना को सीमित कर दिया है। शिक्षा अब ज्ञान का नहीं, बल्कि बाज़ार का उपकरण बनती जा रही है। यह आवश्यक है कि शिक्षा नीति में सांस्कृतिक मूल्यों, नैतिक शिक्षा और भारतीय भाषाओं को पुनः केंद्रीय स्थान दिया जाए। जब तक शिक्षा व्यक्ति में संस्कार, सहिष्णुता, और सामाजिक जिम्मेदारी की भावना नहीं जगाती, तब तक वह अधूरी रहेगी। आधुनिकता और परंपरा का समन्वय ही वह मार्ग है जो भारत को प्रगतिशील और सांस्कृतिक रूप से सशक्त दोनों बनाएगा। भारतीय शिक्षा को पुनः वही दृष्टि अपनानी होगी जिसमें "विद्या" का अर्थ केवल जानकारी नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला और मानवता की चेतना हो। यही सांस्कृतिक पुनर्जागरण का वास्तविक आधार होगा।

संदर्भ सूची

[1]. गांधी, महात्मा. (1953). *हिंद स्वराज.* अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन।
[2]. टैगोर, रविन्द्रनाथ. (1940). *शिक्षा और समाज.* शांति निकेतन: विश्वभारती।
[3]. विवेकानंद, स्वामी. (1958). Complete Works of Swami Vivekananda. कलकत्ता: अद्वैत आश्रम।
[4]. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. (1948). Report of the University Education Commission. नई दिल्ली।
[5]. कोठारी, डी.एस. (1966). Education and National Development. नई दिल्ली: NCERT।
[6]. शर्मा, आर.एस. (2015). *भारतीय संस्कृति और आधुनिकता.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।